॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

केनोपनिषद

विषय सूची

॥अथ केनोपनिषद॥ 3

प्रथम खण्ड 4

द्वितीय खण्ड 8

तृतीय खण्ड 11

चतुर्थ खण्ड 16

शान्ति पाठ 20

॥ श्री हरि ॥

॥अथ केनोपनिषद॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ।
सर्वं ब्रह्मौपनिषदंमाऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म
निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु ।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

मेरे सभी अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत, बल तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां पुष्ट हों। यह सब उपनिशद्वेद्य ब्रह्म है । मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ तथा ब्रह्म मेरा निराकरण न करें अर्थात मैं ब्रह्म से विमुख न होऊं और ब्रह्म मेरा परित्याग न करें। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो । उपनिषदों मे जो धर्म हैं वे आत्मज्ञान मे लगे हुए मुझ मे स्थापित हों। मुझ मे स्थापित हों।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

मेरे त्रिविध– अधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक तापों की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥केनोपनिषद॥

॥ अथ प्रथम खण्ड:॥

प्रथम खण्ड

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १॥

शिष्य आचार्य से प्रश्न करता है कि हे आचार्य ! यह मन किस की प्रेरणा से अभीष्ट वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है? मुख्य प्राण किस से युक्त होकर चलता रहता है? मनुष्य वाणी को किसकी प्रेरणा से बोलते हैं ? और वह कौन सा देवता है जो आंख और कानों को अपने कार्य में लगाता है ? अर्थात् शिष्य के पूछने का तात्पर्य है की इन्द्रियों को अपने कार्यों में प्रवृत करनेवाला कौन सा देव है। ॥१॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः ।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ २॥

आचार्य ने उत्तर दिया:

हे शिष्य ! सारी इन्द्रियों को प्रेरणा देने वाला परमात्मा है, वह कानों का कान है, मन का मन है, निश्चय ही वाणी का वाणी है, वह प्राण का प्राण है, आँखों की आंख है, धीर पुरूष ऐसा जानकर इस लोक से मर कर अमृत अर्थात् मुक्त हो जाते हैं। ॥२॥

अब उस ब्रह्म का वर्णन करते हैं।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः ।
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्यदेव
तद्विदितादथो अविदितादधि ।
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३॥

वहाँ उस ब्रह्म तक न आँखें पहुँचती हैं, न वाणी पहुँचती है, न मन पहुँचता है, अत: जिस प्रकार उसका इस ब्रह्म का उपदेश करना चाहिए वह न हम जानते हैं, न ही यह समझते हैं कि इस दशा में किस प्रकार कोई इसका उपदेश करे क्योंकि वह ब्रह्म जानने योग्य विषय से भिन्न है तथा अज्ञात से भी परे है – ऐसा हमने अपने पूर्वजों से सुना है। ॥३॥

यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

जो ब्रह्म वाणी द्वारा प्रकाशित नहीं हो सकता, अपितु जिसकी शक्ति से वाणी बोलती है, उसी को तुम्हे ब्रह्म समझना चाहिए, तर्क द्वारा जिसे सिद्ध किया जाता है अथवा जिसकी उपासना की जाती है वह

ब्रह्म नहीं है। क्योंकि तर्क की शक्ति तो चक्षु और बुद्धि तक ही सीमित है, जो वस्तु बुद्धि की समझ से भी परे है वहां तर्क क्या करेगा। वाणी प्रत्येक दृश्य और परिच्छिन्न वस्तु का वर्णन कर सकती है परन्तु ब्रह्म न परिच्छिन्न है न साकार है फिर वाणी किसका निर्देश करे, इसलिये ब्रह्म वही है जिसने वाणी की रचना की है किन्तु वाणी उसे कह नहीं सकती।

क्या मनसे उसका मनन नहीं किया जा सकता ?
उत्तर–नहीं । ॥४॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५॥

जो ब्रह्म मन से मनन नहीं करता, और न जिसको मन से जाना जा सकता है किन्तु जिसकी शक्ति से मन मनन (संकल्प-विकल्प) करता है। तुम उसी को ब्रह्म समझो। जो समझते हैं कि मन की कल्पना से हमने उस ब्रह्म पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया सो वह ब्रह्म नहीं है क्योंकि परिमित मन-अपरिमित, और अनन्त गुणों वाले ब्रह्म का ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकता है। ॥५॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥६॥

जिस ब्रह्म को आँखों से नहीं देखा जा सकता किन्तु जिसकी सहायता से ये नेत्र देखते हैं - उसी को तुम ब्रह्म जानो। जिस

साकार की उपासना की जाती है, वह ब्रह्म नहीं है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर निराकार है, शरीर रहित है, निरिन्द्रिय है इसलिये वह नेत्र से दिखाई नहीं देखता है। ॥६॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥७॥

जो कानों से सुनाई नहीं देता, किन्तु जिसकी शक्ति से कान सुनते हैं। अर्थात् जिसने कानों को सुनने की शक्ति दी है उसी को तुम ब्रह्म समझो, शब्द मात्र से जिसकी उपासना की जाती है वह ब्रह्म नहीं है। ॥७॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥८॥

जो ब्रह्म श्वास लेकर नहीं जीता, किन्तु जिसकी शक्ति से श्वास आता जाता है, तुम उसी को ब्रह्म समझो । प्राणोपासक जिसको ब्रह्म समझते वह ब्रह्म नहीं है । ॥८॥

॥ इति केनोपनिषदि प्रथमः खण्डः ॥

॥प्रथम खण्ड समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥केनोपनिषद॥

॥ अथ द्वितीयं खण्ड:॥

द्वितीय खण्ड

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमाँस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ १॥

आचार्य शिष्य से कहते हैं:

हे शिष्य ! यदि तुम ऐसा मानते हो कि "मैं ब्रह्म को अच्छी तरह जानता हूँ" तो निश्चय ही तुम ब्रह्म का अल्प स्वरूप ही जानता हो और जो रूप विद्वान् जनों और देवताओं को भी विदित है वह भी अल्प स्वरुप ही है। अत: तुम्हे इसका सदैव मनन करना चाहिये-तभी ब्रह्म का पूर्ण स्वरुप जाना जायगा।

आचार्य का अर्थ यह है कि अनन्त ब्रह्म के ज्ञान का अभिमान करना मूर्खता का काम है। मनुष्य की अल्प बुद्धि में वह कभी नहीं आ सकता। जो यह अभिमान करता है की "मैं सब कुछ जानता हूँ" वह बहुत ही कम जानते हैं इसलिये ब्रह्म स्वरुप को जानने की इच्छा

रखने वाले मनुष्य को सदैव श्रद्धा पूर्वक उसी की मीमांसा करनी चाहिये अभिमान नहीं करना चाहिए। ॥१॥

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥ २॥

आचार्य के कथन को सुन कर शिष्य ने कहा:

हे आचार्य ! मैं यह नहीं मानता कि मैं ब्रह्म के स्वरूप को भली प्रकार जानता हूँ और न मैं यह मानता हूँ कि नहीं जानता, किन्तु जानता हूँ। हम में से जो भी उस को जानता है वह यही समझता है कि मैं उसको यद्यपि नहीं जानता तथापि जानता हूँ । ॥२॥

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ ३॥

जो मनुष्य समझता है कि मैं ब्रह्म को नहीं जानता, वह उसको जानता है। जो मनुष्य यह समझता है की मैं जानता हूँ-वह वस्तुतः उसे नहीं जानता। ज्ञानियों से वह अज्ञात है और न जानने वाले उसे जानते हैं।

अर्थात् जो मनुष्य श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा उसके साक्षात् दर्शन करने की चेष्टा करते हैं वे ही उसे जान पाते हैं, ज्ञान का अभिमान करने वाले उसे कभी नहीं जान सकते। ॥३॥

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥ ४॥

प्रतिबोध अर्थात् बार बार जानने और मनन करने से वह ब्रह्म जाना जाता है और ऐसा मनुष्य अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य अपनी आत्मा से बल प्राप्त करता है और ब्रह्मविद्या से ब्रह्म को प्राप्त करता है। ॥४॥

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ ५॥

यदि इसी जन्म में ब्रह्म को जान लिया तो सत्य अर्थात् जीवन सफल हो गया, यदि न जाना तो बड़े भारी हानि हुई (क्योंकि क्या पता फिर यह जन्म मिले या न मिले)। धीर पुरुष संसार के प्रत्येक कण कण में प्रभु की सत्ता को देख कर इस लोक से मरने के अनन्तर अक्षय सुख अमृत को प्राप्त होते हैं। ॥५॥

॥ इति केनोपनिषदि द्वितीयः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥केनोपनिषद॥

॥ अथ तृतीयं खण्ड:॥

तृतीय खण्ड

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त ॥१॥

निश्चय ही, ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की, उस ब्रह्म की विजय में देवता महिमायुक्त हुए अर्थात देवताओं को गौरव प्राप्त हुआ। ॥१॥

त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ।
तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत
किमिदं यक्षमिति ॥ २॥

उन देवों ने यह विचारा किया कि यह विजय हमारी ही तथा यह विजय केवल हमारी ही महिमा से प्राप्त हुई है। वह ब्रह्म इन देवों के अभिमान को जान गया और तब वह इन पर यक्षरूप में प्रकट हुआ, परन्तु देवता उसे न जाना पाए कि यह यक्ष अर्थात् पूजनीय कौन है।

अर्थात् परमात्मा ने अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश पञ्च भूतों से सृष्टि की रचना कर, अग्नि आदि देवों में शक्ति स्थापित की। परन्तु देवों ने समझा कि यह जगत् की रचना हमारी ही महिमा है। हम से भिन्न कोई अन्य ईश्वर नहीं है। तब ब्रह्म स्वयं यक्षरूप में देवताओं के समक्ष प्रकट हुए, परन्तु देवता उनको पहचान नहीं पाए। ॥२॥

तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि
किमिदं यक्षमिति तथेति ॥३॥

उन देवताओं ने अग्नि से कहा: हे जातवेद ! यह पता करो कि यह यक्ष कौन है ? अग्नि ने कहा-बहुत अच्छा। ॥३॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा
अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ ४॥

तब दौड़ कर अग्नि यक्षरुपी ब्रह्म के पास पहुंचे, यक्ष ने अग्नि से पूछा कि तू कौन है ? वह बोला-मैं अग्नि हूँ, मैं निश्चय ही जातवेदा हूँ। ॥४॥

तस्मिꣳस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳसर्वंदहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥५॥

यक्ष ने पूछा: अच्छा! तुझ में क्या शक्ति है? अग्नि ने कहा कि पृथ्वी की सम्पूर्ण चीजों को मैं जला सकता हूँ, मेरे अन्दर यह शक्ति है। ॥५॥

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति ।

तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव
निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ ६॥

ऐसा समझ कर यक्ष ने अग्निदेव के सामने एक तिनका रखा और कहा कि इसे जला! अग्निदेव पूरे वेग से उसके पास गए परन्तु अपनी सारी शक्ति लगा कर भी उसको न जला सके और वहीं से लौट कर देवताओं के समक्ष बोले कि - मैं इसको न जान सका कि यह यक्ष कौन है। ॥६॥

अथ वायुमब्रुवन्वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ ७॥

देवता तब वायुदेव से बोले कि हे वायो ! तुम जाकर देखो कि यह यक्ष कौन है। वायु ने कहा-बहुत अच्छा। ॥७॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा
अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥८॥

वायुदेव दौड़ कर यक्षरुपी ब्रह्म के पास पहुंचे, यक्ष ने उससे पूछा कि तू कौन है ? उसने कहा- मैं वायु हूँ, मैं निश्चय मातरिश्वा ही हूँ। ॥८॥

तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ
सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥९॥

यक्ष ने पूछा: अच्छा! तुझ में क्या शक्ति है? वायुदेव ने कहा-जो कुछ पृथ्वी पर है मैं सबको उड़ा सकता हूँ -मुझ में यह शक्ति है। ॥९॥

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति
तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव
निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १०॥

यक्ष ने उनके आगे वही एक तिनका रखा, और कहा इसको उड़ा कर दिखाओ। वायुदेव अपने पूरे वेग से उसके तिनके के पास पहुंचे, परन्तु उस तिनके को उड़ा नहीं सके। तब वह वहीं से लौट पड़े और देवताओं से बोले कि - मैं इसको नहीं जान सका जो यह यक्ष है। ॥१०॥

अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति
तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ ११॥

समस्त देवताओं ने तब इन्द्र से प्रार्थना कि - हे मघवन् ! देखो तो सही यह यक्ष कौन है-इन्द्र ने कहा बहुत अच्छा। वह दौड़ कर उस यक्षरुपी ब्रह्म के पास गए, परन्तु वह इंद्र के सामने से अंतर्ध्यान हो गए। ॥११॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाँ
हैमवतीं ताँहोवाच किमेतद्यक्षमिति ॥ १२॥

वह इन्द्र उसी आकाश में अति शोभावाली सुवर्ण से भूषिता उमा नामक (पार्वती रूपिणी ब्रह्मविद्या) स्त्री से मिले और उससे पूछा कि यह यक्ष कौन है ? ॥१२॥

आशय यह है कि स्थूल इन्द्रियां कभी ब्रह्म को प्राप्त कर ही नहीं सकतीं, किन्तु आत्मा भी बिना सूक्ष्म बुद्धि की सहायता के उस अविनाशी प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकती। इससे से यह भी विदित होता है कि तत्वों में प्रधान अग्नि और वायु तत्व भी उसी परमपिता ब्रह्मरूप परमात्मा के सामर्थ्य से शक्ति प्राप्त करते हैं अन्यथा स्वयं इनमें एक तिनके को जलाने और उड़ाने तक का सामर्थ्य नहीं है।

॥ इति केनोपनिषदि तृतीय: खण्ड: ॥

॥ तृतीय खण्ड समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥केनोपनिषद॥

॥ अथ चतुर्थं खण्ड:॥

चतुर्थ खण्ड

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति
ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ १॥

वह ब्रह्मविद्या देवी उमा इन्द्र से बोली: यह ब्रह्म है और ब्रह्म की इस विजय में ही तुम महिमा युक्त बने हो, अर्थात् देवताओं ने केवल उन्ही की शक्ति से महिमा प्राप्त की है –उमा के इस कथन से ही इन्द्र ने जाना कि यही ब्रह्म है। ॥१॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान्यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते
ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २॥

अग्निदेव, वायुदेव, तथा इन्द्रदेव, समस्त देवताओं में अग्रगण्य है क्योंकि इन देवताओं ने ही सर्वप्रथम ब्रह्म का समीपस्थ्य प्राप्त किया था और उन्होंने ही सबसे पहले यह ब्रह्म है, ऐसा जाना था। ॥२॥

यहाँ उपनिषद् में दो पक्ष प्रकट किए गये हैं एक आध्यात्मिक और दूसरा अधिदैवत । आध्यात्मिक पक्ष में तो इन्द्रिय और आत्मा का ग्रहण होता है, और अधिदैवत में अग्नि, वायु और सूर्य का ग्रहण होता है । आशय यह है कि आँखों से भगवान् की विभूति देख कर और कानों से सुन कर ही आत्मा को भगवान् का ज्ञान होता है, इसी तरह नास्तिक जन भी अग्नि, वायु और सूर्य के सामर्थ्य को देख कर ही परमात्मा के अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ये ही तत्व देव नाम से ग्रहण किये जाते हैं।

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स
ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ ३॥

इसीलिये समस्त देवताओं मे इन्द्र ही सब से बढ़ कर हैं। क्योंकि उन्ही ने ब्रह्म का समीपस्थ्य प्राप्त कर सर्वप्रथम ब्रह्मविद्या रुपी उमा से ब्रह्म के विषय मे जाना। आध्यात्मिक पक्ष मे - इन्द्रियों में आत्मा ही सब से बड़ा देव है क्योंकि इसी ने बुद्धि के द्वारा सब से पहले ब्रह्म स्वरुप का साक्षात्कार किया। अधिदैवत पक्ष में - सूर्य ही सब भौतिक देवों में बड़ा देव है क्योंकि मनुष्य की सारी बुद्धि उसको न जान कर अन्त में यही विचार करती है कि इसका रचयिता अवश्य कोई अनन्त शक्तिमय प्रभु है। ॥३॥

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा३इतीन् न्यमीमिषदा३
इत्यधिदैवतम् ॥ ४॥

देवों में ब्रह्म का चिन्ह ऐसा ही चमकता है जैसे बिजली का चमकना और आंखों का झपकना है अर्थात् जैसे बिजली या आंख बहुत कम समय के लिये चमकती या झपकती हैं। उसी प्रकार इन्द्रियां भी ब्रह्म का साक्षात्कार बहुत कम कर सकती हैं। ब्रह्म का ज्ञान तो केवल सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। यही अधि दैवत पक्ष है। ॥४॥

अथाध्यात्मं यद्देतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णँ सङ्कल्पः ॥५॥

अध्यात्म पक्ष यह है कि यह मन जो चलता हुआ सा कहा जाता है, वही ब्रह्म है। इसलिए मन से बार बार लगातार उसी ब्रह्म का स्मरण करना चाहिए और उसी का सङ्कल्प करना चाहिए। ॥५॥

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनꣳ सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ ६॥

निश्चय ही ब्रह्म भजनीय है, इसलिये सेवनीय ब्रह्म की ही उपासना करनी चाहिये, जो मनुष्य ब्रह्म को इस प्रकार जानकर उसकी आराधना करता है। उसको सभी प्राणी चाहते हैं और प्यार करते हैं। ॥६॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ७॥

आचार्य कहते हैं कि हे शिष्य तुमने जो उपनिषद् पूछी थी, सो हमने उपनिषद् कह दी। अब हम तुम्हे ब्रह्म सम्बन्धिनी उपनिषद् का व्याख्यान करेंगे। उपनिषद् का अर्थ है जिससे ब्रह्म की समीपता प्राप्त हो। ॥७॥

तसै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ८॥

ब्रह्म की समीपता प्राप्त करने के लिये (तप) सहनशीलता (दम) इन्द्रियों का संयम, मन का वशीकरण (कर्म) वैदिक कर्मानुष्ठान यही उसकी प्रतिष्ठा है। वेद उसके सारे अङ्ग हैं और सत्य उसका स्थान है। ॥८॥

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ९॥।

जो मनुष्य निश्चयपूर्वक इस ब्रह्मविद्या को इस प्रकार जानता है। वह पाप को दूर करके चिरकाल तक स्वर्गलोक मे प्रतिष्ठित होता है, प्रतिष्ठित होता है। अर्थात चिरकाल तक ब्रह्म आनन्द का उपभोग करता है। यही सर्वश्रेष्ठ स्वर्ग लोक है। ॥९॥

॥ इति केनोपनिषदि चतुर्थः खण्डः ॥

॥ चतुर्थ खण्ड समाप्त ॥

शान्ति पाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः

श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ।

सर्वं ब्रह्मौपनिषदंमाऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म
निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु ।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

मेरे सभी अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत, बल तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां पुष्ट हों। यह सब उपनिशद्वेद्य ब्रह्म है । मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ तथा ब्रह्म मेरा निराकरण न करें अर्थात मैं ब्रह्म से विमुख न होऊं और ब्रह्म मेरा परित्याग न करें। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो । उपनिषदों मे जो धर्म हैं वे आत्मज्ञान मे लगे हुए मुझ मे स्थापित हों। मुझ मे स्थापित हों।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

मेरे त्रिविध– अधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक तापों की शांति हो।

॥ इति केनोपनिषत् ॥

॥ केनोपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥